

वर्ष २ अंक २५
विक्रम संवत् २०७६ अधिन
अक्टूबर २०२०

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित



विश्व में अनेक महत्वपूर्ण तिथियां जिनसे मानव समाज का किसी न किसी रूप में संबंध है ,
उन्हें हम स्मरण करें, प्रेरणा लें और उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें ।

- 1 अक्टूबर : विश्व शाकाहार दिवस, विश्व संगीत दिवस,
- 2 अक्टूबर : अहिंसा दिवस,
- 3 अक्टूबर : विश्व प्रकृति दिवस
- 4 अक्टूबर : विश्व पशु कल्याण दिवस,
- 5 अक्टूबर : विश्व शिक्षक दिवस,
- 6 अक्टूबर : विश्व वन्य प्राणी दिवस,
- 8 अक्टूबर : वायु सेना दिवस ,
- 9 अक्टूबर : विश्व डाक दिवस ,
- 10 अक्टूबर : विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस
- 10 अक्टूबर : विश्व दृष्टि दिवस,
- 11 अक्टूबर : अंतराष्ट्रीय बालिका दिवस,
- 12 अक्टूबर : विश्व प्राकृतिक आपदा रोकथाम दिवस ,
- 14 अक्टूबर : विश्व मानक दिवस ,
- 17 अक्टूबर : विश्व खाद दिवस
- 21 अक्टूबर : विश्व आयोडीन अल्पता दिवस एवं
1943 में आजाद हिंद सरकार का गठन दिवस,
- 24 अक्टूबर : विश्व पोलियो दिवस, संयुक्त राष्ट्र दिवस,
- 30 अक्टूबर विश्व मितव्यता दिवस

अनेक महत्वपूर्ण तिथियां हमारे महापुरुषों से जुड़ी हैं जो हमें आज भी प्रेरणा दे रही हैं। ये कर्तव्य पालन संदेश देती हैं। हम उन्हें स्मरण करें । अपने परिवार समाज, संस्कृति ,राष्ट्र और विश्व के कल्याण के लिए अपने कर्तव्य निभाएं । ये महापुरुष और उनकी प्रमुख तिथियां इस प्रकार हैं —

- 2 अक्टूबर : लाल बहादुर शास्त्री जयंती ,
- 2 अक्टूबर : मोहनदास करमचंद गांधी जयंती
- 4 अक्टूबर : श्याम जी कृष्ण वर्मा जयंती
- 8 अक्टूबर : मुंशी प्रेमचंद पुण्यतिथि,
- 18 अक्टूबर : रामकृष्ण खत्री पुण्यतिथि
- 22 अक्टूबर : अशफाक उल्ला खान जयंती,
- 23 अक्टूबर : सरदार जोगिंदर सिंह पुण्यतिथि
- 31 अक्टूबर : बाल्मीकि जयंती
- 31 अक्टूबर : सरदार वल्लभभाई पटेल जयंती

आर्य लेखक परिषद्



ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

अक्टूबर २०२०



वर्ष-३ अंक-२५,
विक्रम संवत् २०७७
दयानन्ददाब्द- १६६
कलि संवत् - ५१२१
सृष्टि संवत् - १,६६,०८,५३,१२१

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)



सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)



सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३६६७६६३०,
९६६६३६७०६४०)



आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)



सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सिताबाड़ी, केलवाड़ा
जिला-बारां (राजस्थान)-३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१. श्वानवृत्ति (सम्पादकीय)
२. विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध
३. Five Duties of Grihastha Ashrama
४. Swami Dayanand on Bhakti
५. भारतीय स्वतंत्रता सेनानी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा
६. गलती तो हम भी करते हैं!

ईमेल — aryalekhakparishad@gmail.com

वेबसाइट — <https://aryalekhakparishad.com/>

फेसबुक — आर्य लेखक परिषद्

श्वानवृत्ति

विधाता के बनाए चेतन जगत् पर दृष्टि डालते हैं तो तरह-तरह के रूप रंग आकार और प्रवृत्ति वाले छोटे बड़े असंख्य प्राणी दिखाई पड़ते हैं। इन प्राणियों की प्रवृत्ति और जीवन व्यापार से मनुष्य बहुत कुछ सीख सकता है, सीखता रहा है। सीख कर अपना उत्थान और पतन करता आया है। इन्हीं प्राणियों में से एक प्राणी है श्वान अर्थात् कुत्ता।

किसी मनुष्य को कुत्ता कह कर देखना। वह खुश होता है या नाराज। लोग कुत्ते को भले ही पसन्द कर लें परन्तु स्वयं को कुत्ता कहलाना पसन्द नहीं करते।

इससे विदित होता है कि कुत्ते का चालचलन मनुष्य के लिए अनुकरणीय नहीं है। अन्यथा कुत्ता कहलाने में मनुष्य अवश्य गर्व का अनुभव करता। कोटा में एक आर्य थे महाशय आनन्दस्वरूप जी। कौम की कमियां गिनाने के क्रम में वे एक कमी अवश्य गिनाते थे “कुत्ते की खसलत”। तात्पर्य यह था कि कुत्ते का चालचलन अपना लेना भी इस कौम के पतन के कारणों में से एक बड़ा कारण है। हमने सीधे का मुंह कुत्ता चाटे, कुत्ते की मौत मरना, धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का, दांत निपोरना, दुम हिलाना, हड्डी के एक सूखे टुकड़े पर दो कुत्तों का लड़ना इत्यादि मुहाविरें तो सुन ही रखे हैं। इनमें से कोई भी व्यक्ति और समाज के लिए प्रशस्त नहीं है।

परन्तु आगे चलकर हमने देखा कि वेद में भी वही कहा गया है जो महाशय जी कहा करते थे।

तब हमने इस ओर विशेष ध्यान दिया। विदित हुआ कि कुत्ते की कुछ खास आदतें हैं जो किसी व्यक्ति या समाज में आ जाने पर उसका निश्चय ही पतन कर देती हैं। दुर्भाग्यवश आज हमारा अधिकांश समाज उक्त श्वानवृत्ति को आचरण में अपना चुका है। इस कारण हमारी प्रगति अवरुद्ध हो गई है। सर्वत्र अराजकता, अन्याय अत्याचार, भुखमरी और भय व्यप्त है। नैतिकता चारित्रिक पवित्रता और जीवनमूल्यों का ह्रास हो चुका है।

शासन प्रशासन और न्यायालय विश्वास के योग्य नहीं रहे।

आइए उन श्वान आचरणों पर दृष्टि डालें जो बहुत घातक हैं।

1—जातिद्रोह

कुत्ते स्वजाति के शत्रु होते हैं। हमारे समाज ने इस प्रवृत्ति को सदियों से अपना रखा है। गुलामी का इतिहास जातिद्रोह से भरा पड़ा है।

2—निर्बलप्रताड़न और स्वत्वहरण

कुत्ता सदैव अपने से कमजोर कुत्ते पर ही आक्रमण करता है। सबल के समक्ष दांत निपोरता और दुम दबाकर भागता है। हमारे समाज पर सदियों से सामन्तशाही यही करती आ रही है। वर्तमान में राजनेता और अफसर कुत्तों से भी बदतर हो चुके हैं।

3—वान्ताशी

वान्ताशी का अर्थ है उल्टी (वमन) करके उसे पुनः खा लेना। कुत्ता ऐसा ही प्राणी है। इस आदत के आ जाने पर मनुष्य वचन देकर पलट जाता है, शपथ ग्रहण करके तोड़ देता है, वादा करके मुकर जाता है। इसे ही थूक कर चाटना भी कहा जाता है। यह दुर्गुण वर्तमान राजनीतिबाजों में भरपूर हो रहा है। संविधान, पद और गोपनीयता की शपथ लेकर भी ये लोग इनकी धज्जियां उड़ाते आए दिन देखे जाते हैं। “प्राण जाएं पर वचन न जाई,” वाली संस्कृति में जन्म लेकर भी हमारे राम भक्तों की बातों पर अब किसी को भी भरोसा नहीं रहा। जिम्मेदार पदों पर बैठे लोगों को देश के साथ गद्दारी करने, विदेशों की जासूसी करने और झूठ बोलने में तनिक भी लज्जा नहीं आती।

4—टुकड़खोरी

पराए टुकड़ों पर पलना और टुकड़ा डालने वालों के इशारों पर भौंकना यही श्वान कर्म है। देश का युवा वर्ग यही कर रहा है। वह स्वविवेक और स्वाभिमान त्याग कर सिर्फ भौंकने में लगा हुआ है।

बिकने वाले सांसद और विधायकों ने टुकड़ों के

लिए दल बदल कर श्वानवृत्ति को ही अपनाया है।

5-उच्च स्थान पर मूत्रत्याग

कुत्ते मूतने के लिए साफ सुथरे ऊंचे स्थान का चयन करते हैं। फिर शिर उठा कर बड़े रोब से उलट पलट कर कई बार मूतते हैं।

हमारे देश में इसी आदत के कारण लोग किसी भी सम्माननीय पुरुष को बेहिचक गाली बक देते हैं। किसी भी महापुरुष की प्रतिमा को तोड़ देते और जूतों की माला पहना देते हैं। परिणाम स्वरूप कोई भी महापुरुष या देवी देवता अपमानित होने से नहीं बचा। किसी की भी महान् देन को तुच्छ बता देना और सच्चरित्र को चरित्रहीन बता देना इनके बाएं हाथ का खेल है।

वेद में कुछ प्राणियों के चाल चलन को बल पूर्वक प्रयत्न पूर्वक छोड़ देने का उपदेश है, उनमें से एक कुत्ता भी है। वेद ने कहा है कि इस आदत को ऐसे छोड़ दे जैसे पत्थर से किसी दुष्ट हिंसक विषैले प्राणी को रगड़ कर मार देते हैं।

आखिर वेद ने कुछ समझ कर ही ऐसा कहा होगा। अतः जो स्वयं को कुत्ता नहीं कहलाना चाहते और कुत्ते की मौत नहीं मरना चाहते उनके लिए वेद का सन्देश है कि कुत्ते की खसलत छोड़ दो।

हे मानव! "जहि श्वयातुम्"

— वेदप्रिय शास्त्री

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु रथो दिव्यः स सुपर्णो
गरुत्मान्।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋग्वेद ०१ / १६४ / ४६)

इस मंत्र का देवता सूर्य है, अर्थात् जो सब जगत् का उत्पादक है, प्रेरक है एवं स्वयं सदा प्रकाशमान हुआ व अन्य सब को प्रकाशित करने वाला है उसको इन्द्र, वरुण, अग्नि कहते हैं। ज्ञानीजन उस एक, अद्वितीय विद्यमान तत्त्व को बहुत प्रकार से पुकारते हैं, बहुत से नामों से स्मरण करते हैं। वे उसको अग्नि, वरुण, यम और मातरिश्वा भी कहते हैं।

वेद ऋचाओं से, मन के भावों से
तुमको ही हे नाथ! पुकारें.....हो
गम की आहों से, भरी निगाहों से,
केवल तेरी ओर निहारें.....हो ॥१॥

तुम बिन अपना कौन हैं जिसको,
मन की व्यथा सुनाएं।

तुम सा दाता कौन हैं जग में,
जिसके दर पे जाएं।

सोच समझ कर, सबको तजकर,
आंचल तेरे द्वार पसारें..... हो ॥२॥

हम सब तेरे आश्रित केवल, तू ही नाथ हमारा।
जीवन पथ पर, छोड़ न देना, भगवन्! साथ
हमारा।

अज्ञानी हम, अभिमान्नी हम,
तब न सकें जो आप न तारेंहो॥३॥

तू ही सब जग,का मालिक है,
सबका भाव्य विधाता।

न्याय से तेरे, हर इक प्राणी,
कर्मों का फल पाता।

शीश झुकाएं हम, तब गुण गाएं हम,
कभी न तेरी याद विसारें.... हो ॥४॥

हमें सुपथ से ले चल भगवन्, जीवन सफल
बनाएं।

तेरी प्रेरणा के प्रकाश में, हम शुभ कर्म कमाएं।

दया करो अब, दुख हरो सब,
“वेदप्रिय” के काज संवारें हो ॥५॥
वेद ऋचाओं से

— वेदप्रिय शास्त्री

विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध

— अखिलेश आर्येन्दु

सनातन वैदिक संस्कृति के अजर अमर ग्रंथ वेद और अध्यात्म के ग्रंथ कहे जाने वाले उपनिषदों में मानव जीवन, प्रकृति, आत्मा, परमात्मा और विचारों का अत्यंत विशद वर्णन किया गया है। जीवन संघर्षमय है और संघर्षों से प्राप्त होने वाला अनुभव मनुष्य को नई खोज के लिए प्रेरित करता आया है। आध्यात्मिक व्यक्ति जो खोजता है, वह स्वयं से प्रारम्भ करता है और भौतिकवादी व्यक्ति जो भी खोजता है, वह बाहर से प्रारंभ करता है। भौतिकवाद सर्वप्रथम मानव की आवश्यकताएं बढ़ाता है। फिर उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसार को संसाधनों से युक्त करना चाहता है। और अध्यात्मवाद व्यक्ति को स्वयं को सर्वप्रथम खोजने की प्रेरणा देता है। और खोजते-खोजते अपने परम लक्ष्य तक पहुंचने के लिए मंत्र बताता है। अध्यात्म बाहर ढूँढने की बात नहीं करता, क्योंकि बाहर कुछ ऐसा है नहीं जिसे प्राप्त कर पूर्णता को प्राप्त किया जा सके। अपूर्ण प्राप्ति के लिए पूर्ण जीवन लगाना कोई बुद्धि की बात तो नहीं कही जा सकती। इसलिए वैदिक वांग्मय में जीवन को धर्म, अर्थ, काम और अंत में मोक्ष के लिए समर्पित करने का उद्देश्य बनाने की बात करता है। मनुष्य के जीवन के जिन चार अवस्थाओं में चार आश्रमों का विभाजन है वे आश्रम मनुष्य को पूर्णता की ओर ले जाते हैं। विद्या को प्राप्त कर धर्म की प्राप्ति करना, धर्म के द्वारा अर्थ की प्राप्ति करना, अर्थ के द्वारा जो हमारी कामनाएं हैं, आवश्यकताएं हैं उनको पूरी करना और जब इनकी पूर्ति हो जाए तो दुख के निवारण के लिए मोक्ष की प्राप्ति करना यह वैदिक जीवन दर्शन का ही नहीं, विश्व के सभी दर्शनों का उद्गम स्थल है। इस उद्गम से जिन्होंने जो प्राप्त किया, उन्होंने वैसा वर्णन अपने विचारों के माध्यम से किया। हिंदी साहित्य में इसके पूर्व प्राकृत व पाली और फिर वैदिक संस्कृत साहित्य में ऐश्वर्य का वर्णन किया गया है। ऐश्वर्य दो प्रकार के माने गए हैं— भौतिक ऐश्वर्य है जिससे दूध, पूत, धन-धान्य की प्राप्ति होती है। और उसे (भौतिक ऐश्वर्य) प्राप्त कर सुखी होना और

दूसरा ऐश्वर्य सद्गुण है जिसे प्राप्त कर इसे धारण करके पुण्य की प्राप्ति करना। वैदिक वांग्मय में दोनों को संतुलित करते हुए आगे बढ़ने की प्रेरणा दी गई है। नचिकेता मृत्यु का स्वप्निल साक्षात्कार करते हुए जो परम सत्य अर्जित करते हैं वह अद्भुत है। महान् कवि कुंवर नारायण ने लिखा है —

बाहर के इस अंधकार से
कहीं बड़ा भीतर प्रकाश है ।
तेरे होने और न होने का
बाहर से अधिक पुष्ट
भीतर प्रमाण है
उसे सिद्ध कर
तू पाएगा —

वही स्रोत है, वही मुक्ति है, वही त्राण है।

कविता की इन कुछ पंक्तियों में बहुत कुछ कह दिया गया है। अक्टूबर मास में नौ दिन के नवरात्र उसके बाद दशहरा का महोत्सव मनाया जाता है। पौराणिक जगत् में नवरात्र का बहुत महत्व दिया जाता है, और दुर्गा की मूर्तियां बना कर, फूल-माला और आकर्षक परिधानों से सजा कर विसर्जन करते हैं — नदियों में तालाबों में। फिर दशहरा के दिन रावण, कुम्भकरण और मेघनाथ के पुतले जलाकर दशहरा मनाया जाता है। और बताया जाता है यह परम पावन त्योहार असत्य पर सत्य की विजय, अन्याय पर न्याय की विजय, झूठ पर सत्य की विजय, अज्ञानता पर ज्ञान की विजय, अंधकार पर प्रकाश की विजय, अशुभ पर शुभ की विजय के रूप में मनाया जाता है। स्पष्ट है अवैज्ञानिकता पर विज्ञान की विजय के लिए लाखों वर्षों से मनुष्य प्रयास करता आया है। दुख पर विजय, अविद्या या अंधकार पर विजय — विद्या के द्वारा, ज्ञान के द्वारा, बुद्धि के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन इसके लिए आवश्यक है, सबसे पहले मन पर विजय प्राप्त करना। जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर लिया उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। उपनिषदों और योग दर्शन में मन पर विजय प्राप्त करने के अनेक उपाय बताए गए हैं।

वेद में शुभ संकल्प की बात बार-बार दोहराई गई है। इंद्रियों को नियंत्रण में करने और जीवन को सन्मार्ग पर आगे बढ़ाने की बात बहुत ही उत्तम ढंग से की गई है। हमारे अंतःकरण में अंधकार, मूढ़ता, रूढ़िवादिता, हिंसा, घृणा, द्वेष जितने भी नकारात्मक भाव उत्पन्न होते हैं उन भावों का समूल नाश करने के लिए विद्या प्राप्त करना परम आवश्यक है। लेकिन केवल विद्या प्राप्त करने से ही सब कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता। विद्या के साथ-साथ पारदर्शी उद्देश्य, कठिन परिश्रम, सत्य का सहारा और आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है। भौतिकवाद का साम्राज्य बाजारवाद और भौतिक संसाधनों के साथ विश्व में निरंतर बढ़ रहा है। बाजारवाद और भौतिक साम्राज्यवाद ने मनुष्य को इस कदर उलझा दिया है, अपने मकड़जाल में फंसा लिया है उससे निकलना लगभग असम्भव हो गया है। इसलिए विद्या की आवश्यकता है। ऐसी विद्या जो बाजारवाद और भौतिक साम्राज्यवाद के चकाचौंध से बचाए और सही मार्ग पर ले जाने के लिए युक्ति और मंत्र बताए।

विज्ञान का उपयोग हमारे ऋषि — महर्षियों ने वर्षों पहले किया था। इसलिए वे सुखी और शांति में जीवन बिताने के योग्य थे। वेद के मंत्रों में ब्रह्माण्ड के विभिन्न अवयवों व तत्वों में शान्ति के लिए प्रार्थना की गई है। यह शांति विद्या की तरफ ले जाने वाली है। यह परम सुख की ओर ले जाने वाली है। आज विश्व में सबसे अधिक हिंसा, अशांति, असंवेदनशीलता, भ्रष्टाचार, शोषण, पाखण्ड, अंधविश्वास फैला हुआ है, इनके निवारण के लिए भी विद्या चाहिए। राम विद्या से युक्त हैं। रावण अज्ञानता और अहंकार से। युद्ध में राम की विजय इसलिए हुई कि उन्होंने विद्या का उपयोग अज्ञानता, अहंकार और असत्य के समूल नाश के लिए किया। राम वेदों के ज्ञाता थे। जीवन में उनके सत्य का प्रकाश था। सत्य के आधार पर उन्होंने असत्य को परास्त किया। विद्या सभी दुखों का नाश करती है।

अज्ञानता, अहंकार, असत्य का प्रतीक रावण और सत्य, विनम्रता, पवित्रता और ज्ञान के प्रतीक श्री राम दोनों को विश्व याद करता है। दोनों मानव समाज में अपनी पैठ बनाए हुए हैं। लेकिन रावणी प्रवृत्तियां निरंतर बढ़ रही हैं। यही कारण है विश्व में आतंक, हिंसा, शोषण, क्रूरता, विषमता, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, अनैतिकता,

दुराचार, असत्य, स्वार्थ, बदले की भावना, क्रूरता, दानवता, बाजारवाद, साम्राज्यवाद की प्रवृत्तियां निरंतर बढ़ रही हैं। इन अमानवीय प्रवृत्तियों को रोकने के लिए हजारों की संख्या में राम चाहिए। रावण पतित तो हुआ लेकिन इतना प्रतित नहीं हुआ कि उसका नाम लेने में भी हम घृणा करें। रावण ने अपनी अच्छाइयों का भी परिचय दिया। मर्यादा का भी परिचय दिया। प्रत्येक मनुष्य में मानवीय, दानवीय और दैवीय प्रवृत्ति होती है। इनका प्रतिशत कम और अधिक हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है मनुष्य के अंदर जो दानवीय प्रवृत्ति का प्रतिशत बढ़ रहा है उसको ध्यान में रखते हुए मानवीय और दैवीय प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जाए अर्थात् दानवीय प्रवृत्तियाँ की लकीर को कम करने की अपेक्षा दैवीय प्रवृत्ति की उससे बड़ी लकीर या मानवता की बड़ी लकीर खींच दी जाए। बढ़ रही तामसी प्रवृत्तियों को कम करने के लिए आवश्यक है कि स्वत्तिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया जाए। स्वत्तिक वृत्तियों को बढ़ावा देने के लिए विद्या की प्रवृत्ति को बढ़ाना होगा, ज्ञान की प्रवृत्ति को बढ़ाना होगा। शुभता की प्रवृत्ति को ढाना होगा। शान्ति की प्रवृत्ति को बढ़ाना होगा।

सोशल मीडिया के इस युग में मनुष्य एक यंत्र जैसा बनता जा रहा है। यह मानव सभ्यता के लिए अत्यंत खतरनाक है। विनाशकारी है। जिस यंत्र को मनुष्य ने बनाया उस यंत्र के हम पराधीन हो जाएं, यह बुद्धि का दिवालियापन है। इसका कारण है विचार विमर्श का सर्वथा अभाव। स्वस्थ संवाद का अभाव। विद्या के प्रसार का अभाव और आत्मविश्वास का निरंतर कम होते जाना। विद्या के कम होने के कारण धैर्य, सहनशीलता, धर्म के प्रति प्रवृत्ति, शांति, मर्यादा का पालन, सहिष्णुता और विनम्रता का सर्वथा अभाव होता जा रहा है। समाज में बढ़ती हिंसा, दुराचार, आतंक, भ्रष्टाचार, स्वार्थ, घृणा की प्रवृत्तियां निरंतर बढ़ने का सबसे बड़ा कारण मानव में संवेदनशीलता की कमी। चिंतन विमर्श और स्वाध्याय की कमी। विद्या का मार्ग सभी क्षेत्रों को पूर्णता की ओर ले जाता है पवित्रता की ओर ले जाता है, विकास की ओर ले जाता है, उन्नति की ओर ले जाता है, धर्म की ओर ले जाता है। कहने के तो नवरात्र में नौ दिनों तक देवी दुर्गा और महिषासुर की प्रतिमाएं बनाकर खूब घंटे — घड़ियाल बजाए जाते हैं। डीजे और लाउडस्पीकर

लगाए जाते हैं। सजावट की जाती हैं, लेकिन वास्तव में दुर्गा और महिषासुर जिसके प्रतीक हैं उस पर किसी का ध्यान नहीं जाता। अरबों रुपए दशहरा और नवरात्र में हिंदुओं के खर्च हो जाते हैं। परिणाम इसका शून्य होता है। नवरात्र, दशहरा, दीपावली सहित जितने भी पर्व और त्यौहार हैं सभी बाजारवाद के चपेट में, अविद्या के चपेट में हैं। बाजारवाद ने पर्व और त्योहारों की स्वत्तिकता छीन ली है। एक चकाचौंध बाजार मनुष्य के अंदर पैदा कर दिया है। जिस के मकड़जाल में फंसकर हम अपने उत्सवों को भी बाजारू बना दिया है। बाजार का एक नियम और स्वभाव है, और वह नियम है किसी भी तरीके से अधिक से अधिक मुनाफा कमाना। पर्व और त्योहार बाजार नहीं हो सकते। अगर बाजारू बन रहे हैं तो यह पर्व और त्योहार मनानेवालों की असंवेदनशीलता, मूर्खता, मुढ़ता, अंधविश्वास और पाखंड के कारण है। भारतीय समाज में जो समाज होली, दीपावली, दशहरा मनाते हैं वह समाज आज सबसे अधिक असंवेदनशील, अंधविश्वासी, पाखण्डी, बाजारू और स्वार्थी बनता जा रहा है, यह अत्यंत चिंता की बात है।

चिंता के अनेक प्रश्न हैं। उन प्रश्नों के उत्तर भी हैं, लेकिन कारण पर ध्यान देने वाला शायद कोई नहीं है। आज समाज की जो स्थिति है, वह क्यों है ? किस कारण से है? किसके कारण से है ? कब से है ? इस पर विचार शायद करना हम भूल गए। राम, कृष्ण, शिव की जय बोलने वाले अंतरमन से भी हार चुके हैं और बाहर से भी हार रहे हैं। जो समाज कभी विश्व विजयी हुआ करता था, वह स्वयं से हार रहा है, यह अत्यंत चिंता का विषय है। शताब्दियों पहले भारतीय समाज में विद्या प्राप्त करने के साधन गुरुकुल हुआ करते थे, आचार्य कुल हुआ करते थे। वैसे न तो गुरुकुल रहे न तो वैसे आचार्य रहे। विद्या के नाम पर अविद्या और बाजार में अपनी स्थिति अच्छी बनाने की युक्ति को परोसा जा रहा है। इस पर विचार करने की आवश्यकता है। हम कभी एक सर्वश्रेष्ठ जीवन दर्शन लेकर विश्व के सामने हुआ करते थे। सबसे बड़े वैज्ञानिक हुआ करते थे। सबसे बड़े धार्मिक, सबसे बड़े संस्कृतिज्ञ घोषित हुए थे। बड़े साहित्य के भण्डार थे हमारे पास। कोई ऐसा क्षेत्र न था जहां हमारे वैदिक ऋषि-मुनियों की, हमारे पूर्वजों की तूती न बोला करती थी। ये कैसे सब समाप्त हो गये। इस पर चिंतन की

आवश्यकता है। विद्या हमारे से दूर कैसे होती जा रही है, होती गई। इस पर चिंतन की आवश्यकता है। राम के चरित्र और कृष्ण के चरित्र को जीवन में उतारने की अपेक्षा हम राम और कृष्ण की जयकार का जयकारा लगाकर उनकी संतति होने का प्रमाण देते हैं। यह हमारा अंधविश्वास और पाखण्ड क्या नहीं है ? हम दूसरों को क्या दिखाना चाहते हैं। जो नहीं दिखाना चाहिए वह दिखा रहे हैं, जो दिखाना चाहिए उसको नहीं दिखा पा रहे हैं। जो पढ़ना व पढ़ाना चाहिए उसे पढ़ पढ़ा नहीं रहे हैं। और जो नहीं पढ़ाना नहीं चाहिए उसे हम पढ़ा रहे हैं। यह विचार और चिंता का विषय है। धर्म का ध्वज संसार में फहराने वाला आर्य आज स्वयं से इतना हारा हुआ क्यों है ? आज स्वयं से इतना गिरा हुआ क्यों है ? इतना पतित क्यों है? इतना स्वार्थी क्यों है ? अन्याय के कार्य क्यों करने को तैयार रहते हैं ? ये विचार के विषय क्या नहीं है ? संसार को दृष्टि प्रदान करने वाला आर्य आज दृष्टिहीन क्यों हो गया है ? इतना अंधविश्वास और पाखंड किसके लिए और क्यों ? जिनसे न तो अपना ही हित है न तो समाज का हित है। न धर्म का हित है न तो संस्कृति का हित है। इन पर महाकवि नाथूराम शर्मा शंकर ने लगभग एक शताब्दी पूर्व भारतीय समाज को जागृत करने के उद्देश्य से लिखा था जो आज भी प्रासंगिक है। महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने लिखा है —

**विपत्ति में रक्षण सर्व भूत का,
सहाय होना असहाय जीव का,
उबारना संकट से स्वजाति का,
मनुष्य का सर्वप्रथम धर्म है।**

महाभारत काल से जो अंधा युग प्रारम्भ हुआ, वह निरंतर चला रहा है। अनेक महापुरुषों ने विद्या के बल पर, विद्या के प्रबोध पर, अंधकार को हटाने का प्रयास किया। अंधकार हटा भी लेकिन फिर से छा गया। महान् साहित्यकार धर्मवीर भारती ने लिखा है —

**उस दिन जो अंधायुग अवतरित हुआ जग पर,
बीतता नहीं रह — रह कर दोहराता है।
हर क्षण होती है मृत्यु प्रभु की कहीं न कहीं,
हर क्षण अधियारा गहरा होता जाता है।
हम सबके मन में गहरा उतर गया है युग,
अंधियारा है, अश्वत्थामा है, संजय है,
है दास वृत्ति उन दोनों वृद्ध पहरियों की।**

FIVE DUTIES OF GRIHASTHA ASHRAMA

—  **Dr. Roop Chandra 'Deepak'**
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

The husband and wife while leading a married life under Vedic Culture have Five Great Duties to perform. These duties are called 'Panch Mahayajnas' in Sanskrit language. They are Great Duties, as they are performed in all families daily. They are:-

- (1) Worship to God and Study of Vedas.
- (2) Performance of Havan and Honour to Scholars.
- (3) Service to parents and Rearing of children.
- (4) Respect to Atithis (guests) and Promotion of World Peace.
- (5) Hospitality to the Helpless and Kindness to the Animals.

The First Duty is called 'Brahmyajna'. The word 'Brahma' carries two meanings—God and Veda. So, the Duty has two parts—to worship God, and to Study the Vedas.

God is all kindness and as such He provides all vital things for animals and plants before their existence on earth. He creates air that is essential for both animals and plants. He also makes the rule that the animals would inhale oxygen to exhale carbon-di-oxide and the plants would inhale carbon-di-oxide to exhale oxygen so that both of the vital

gases preserve each other by way of a perfect cycle.

God creates water for all living beings. He also makes the rule of water-cycle by way of which it is rained, consumed and drained into the sea wherefrom it evaporates and rains again to the earth. God creates food for all beings. He also makes the rule that the earth would multiply the seeds of grains sown into it. As a mother gives bread to all her children, good or bad, God also provides food for all men and women, birds and fish, cows and snakes, trees and plants.

That is why our First Duty is to worship God. The second part of this duty is to Study the Vedas. The Vedas present the true concepts of God, Soul and the Matter. They guide us how to worship God. They preach us the duties of man to other beings. They also clarify the properties of inanimate matter and the usage of things made of it.

The Vedas are the source of all knowledge, scientific or spiritual. They are for all people of all ages. The Vedic prayers are also for all men and women. Exposed by God at the outset of the Universe, they always remain the same. So all men and women should study the

Vedas daily, as the second part of the First Duty of all married couples under the Vedic system of life.

The Second Duty is to Perform the Havan daily and to Honour the Scholars. It is called 'Devyajna'. The word 'deva' carries two meanings-'the donor' and 'the scholar'. Since the havan or fire-sacrifice purifies the atmosphere and brings the rains down, it is acknowledged as a donor of good health, long life, grains, water and good temperature. The scholars are undoubtedly useful to the society. Hence the two-fold Vedic duty carries two great objectives.

The havan or fire sacrifice is one of the most important duties in Vedic Culture. It is performed at dawn and dusk daily. Special havans are also performed on special occasions like birth, nomenclature, admission to school and convocation, marriage, festivals etc. But the essential Duty is to perform the Daily Havan.

The havan comprises two procedures, i.e., the dropping of oblations (Ahuti) and the chanting of hymns (Vedic mantras). The oblations consist of four kind of substances- the nutritious, the odoriferous, the sweet, and the medicinal. The hymns are categorised according to the occasion, and some of them are common to all purposes.

Man discharges a number of impurities from his body, which produce the stink, diseases and sorrow. In return he should purify and enrich the air that is the

common source of life and health to all beings. Since the fragrance through flowers, scented sticks and perfumes is not so effective as that through the purification of atmosphere by fumigation of healthful and anti-disease substances, it is better to embrace the latter in our daily life.

Some of the Historians, bereft of Vedic knowledge, charge the havan culture with the acts of violence. They allege that the Vedas advocate animal sacrifice during the process of havan. This is a false allegation against Vedic Culture which is perfectly non-violent in the true sense of the term. The word 'sacrifice' really means the sacrifice of one's ego or to sacrifice oneself for some common cause. But it does not mean killing of innocent animals.

The oblations offered into the fire-pot bring to us physical and chemical boons of the havan. The hymns, recited during the process, give us true knowledge and divine inspirations. Such inspirations help the persons purify themselves. As the impurities automatically enter our house but for cleanliness we have to work hard, so is our mind. The sinful thoughts automatically enter into it but to make it pious we have to contemplate regularly.

The scholars are real pioneers of society. They first attain knowledge, enhance it through contemplation and research, and then pave the way to progress and happiness for the whole

society. There have been thousands of scholars who dedicated their lives to the development of the physical, social and spiritual sciences. People all over the world are enjoying themselves on the contributions made by these dedicated scholars. Such scholars really deserve the reverence of one and all.

A true scholar is that who possesses a profound knowledge of God, Soul and the matter, who always performs noble deeds, and who is devoted to both God and society. Vidur, a great Scholar, has counted a number of qualities which a Vedic Scholar should possess, and they are following —

- (1) He has a true and clear concept of God, Who is omnipresent, omnipotent, formless, just, kind and blissful.
- (2) He knows the true qualities of Soul who is animate, finite, eternal, transmigrating and striving for emancipation.
- (3) He has a correct knowledge of the Matter and its inanimate nature.
- (4) He is never lethargic or evasive, but ever prepared to initiate good deeds.
- (5) He is tolerant to both joy and sorrow, profit and loss, respect and insult, life and death, and the people of different ideologies.
- (6) He always follows the right path, and cannot be detracted by any greed, fear, sorrow or pleasure.
- (7) He has a firm belief in God and does not question His authority.

(8) He has a pious faith in the scriptures and never condemns the teachings of Vedas.

(9) He does not try to get the things which are impossible and never worry about the things lost.

(10) His knowledge is based on reasoning and his arguments are logical and sound.

(11) He is capable of explaining the scriptures through vivid examples.

(12) His memory is sound and long lasting.

(13) His deeds are always in accordance with the scriptures and he never disobeys the noble traditions.

Such learned persons and Vedic Scholars are a boon to society and they must be respected by one and all. So, our Second Duty is to respect and Honour true Scholars along with Performing the Daily Havan.

तप — यथार्थ शुद्ध भाव, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अन्यायाचरण में जाने से रोक रखना अर्थात् शरीर, इन्द्रिय और मन से शुभ कर्मों का आचरण करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना-पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मों का नाम तप है।

— महर्षि व्यास उवाच

SWAMI DAYANAND ON BHAKTI

—  Tarachand D. Gajra

Of the many charges that are repeatedly brought against the Arya Samajists, one is want of Bhakti. 'With an Arya Samajist', so says the critic, 'Dharma is synonymous with discussion. Devotion he has none and Shradha finds no place in the programme of his reform work. Vehemently criticising other sects, he spends his time in picking holes in the pockets of his antagonists and depicting in darkest hues the prophets of religious other than his own. Such a man, by his very nature, is incapable of developing a devout heart and a devoted soul. But the critic does not stop here. From the Arya Samajist he turns to his Guru. Finishing with the living members of the Samaj, he engages himself in digging out the bones of the dead and devoted Dayanand. "The Arya Samajist is not a Bhakta because his Guru Swami Dayanand never preached Bhakti. He spent his time in railing against other religious denominations. That appears to have been the sole aim of his life." This perhaps comes from a rather severe critic. But often a man who admires the Swamiji and the Samaj in several ways, heaves a sigh and says "All is well, but, alas! there is no spiritual life, no Bhakti, no devotion in the teachings." It is my belief that the above view of the critics is unfounded and due to the ignorance of the real teachings

of the Swami. I therefore take his opportunity to glide with the reader through some of the works of Swamiji to get a true idea of his teachings on higher spiritual life.

Before I do this I shall just throw a glance at the history of India during the post Mahabharata period. The beginning of this period is one of the most certain dates in the history of India. The battle of the Mahabharata is not shrouded in mystery as several other events of Indian history are. The causes, the effects and the events of the war are well known to every one. At the time of the war, there was present in India a sage who was respected and revered by all in existence then. Bhishma and Vidura, Yudhishtir and Dhritarashtra, Kirpa and Drona all recognized his merit. Vyas sweetly sings: "The side on which the Yogeshwara (Powerful Yogi) Krishna stands and on which the holder of bow, Pratha plays his part, on that side you find prosperity and victory, happiness and firm morality, so I think." Thus then this great sage as described by the writer of Mahabharata is capable of having at once the earthly and the heavenly, the physical and the spiritual good. And why? The simple reply is that his teachings, his beliefs and ideals are all-embracing, harmonious. There is no one

sidedness, no atrophy of one faculty, no hypertrophy of another.

Long after the battle of the Mahabharata, long after the teachings of Bhagwan Krishna were forgotten, the people of India passed through a strange transformation. Instead of the all sided development of man meaningless ritual and dead ceremonials were taken to be religion. The degradation was very great. The reality was altogether forgotten and the ritual distorted into immorality by the mischief of selfish and passion-loving Vam-Margis. India alone did not pass through this stage. There were other lands which underwent a similar transformation. The animal sacrifices of the old Testament and those of Vam Margis are closely allied. The assertion in the Scandinavian Scriptures that "animal sacrifices were invented by the selfish and the wicked" lends support to my view. But this is rather wandering away from the main point.

All morality was forgotten and Karma was mistaken for ritual. To put life in the dead skeleton was required a Messiah; to make the ritual a living force or to sweep it away and replace it by a living morality was wanted a reformer. He came in the form of the Great Buddha who to my mind stands primarily as the apostle of action, the preacher of Karma.

But great movements are often wrecked on the rock of human weakness. The followers of the 'Light of Asia' soon learnt

to associate Karma with more austerities and asceticism. The spirit was dying when Swami Shankar-Acharya began his work. Karma is bound to degrade into mere forms if there is no Jnan behind it. To fulfil this want Shankar Swami called forth the people to 'Jnan' When I say so I am not to be understood to say that Shankar Acharya did not care for Karma and Bhakti. Not the least of it. Jnan stands prominent in his preaching because it was required most prominently in that age. Shankar's work after some time came to be forgotten and a newer movement, pushed on by a number of prophets, was inaugurated. This movement, whatever else may be said of it, has for its keynote 'Bhakti', Chaitanya or Lord Gauranga went through Bengal singing the praise of the Lord Kabir and Nanak worked in the Northern India; Tukaram, Dhyandeva and several others in Southern India. Complete devotion was what they preached. "No attachment to the world was what they taught" Justice Ranade speaks of a saint who killed his child by throwing it in a pit when he was accused of loving his child more than the Lord he talked of. Thus had the history run for some time. But during the confusion that came over the land after these saints were gone, the movement inaugurated by them became dead. Some had picked up one idea, others another. Those who had adopted Buddhism consciously or unconsciously stood for all kind of tortures and austerities. The

Lamas and the monks of Buddhistic temples believed that the path to Nirvana was to live a severe life, to kill the flesh and to follow a certain prescribed routine detailing the number of times a man should stretch himself like a stick on the ground before the idol. The practices were imitated and adopted by several of the pure Hindu sects. Those who believed themselves to walk in the path of the great Shankar, came to identify the path of salvation with the cry "Aham Brahmasmi" (I am God). For them there was neither Karma (action), nor Bhoga (fruit of action). Devotion and Bhakti, too, had no place in their programme of human life. As for Jnan it was all lip deep. There was no realization of any kind. A smattering or a complete ignorance characterised the Sadhus and the laymen were no better. They had developed strange notions of Bhakti. Some held and preached that the repetition of 'Rama' was sufficient to take them to Heaven. Others thought a particular kind of Tilak (mark on forehead) stamped most sedulously was true devotion. Bathing the idol, keeping food before it and ringing the bells was a model of Bhakti to others. The mistaken notions of Bhakti in some cases led to the degrading institution of Devadasis and of giving over the children to the Fakirs and Saints. In the cases of others Bhakti was identified with over-doses of excited prayers, fumings of heart, simmerings of mind, suspension and destruction of

reason. This when carried to excess produced dances and often amorous singing culminating in Ras Lila and Sufistic love for fair faces.

This was the situation when Swami Dayanand began his work. The keynote to his work is harmony. Yes harmony I say and say it inspite of so many critics. They who think that Swami Dayanand has created a sect and added to the wranglings of the sectarians, have never dispassionately studied his works. They have seen only one side and not the other. Dayanand's work in pulling down these wrong notions of ages is familiar to them, but his labour in building up a newer and manlier race is not known to them. They have seen Dayanand as the destroyer of superstition, but not as the constructor of a higher and better kind of religious consciousness. But the Swamiji's aim of life can properly be realized only when both the slides are seen.

The harmony is in fact the keynote to his mission can be seen from the principles of the Arya Samaj. He clearly lays down here that bodily, spiritual and social progress should go hand in hand. The idea is emphasised in the following words in the Satyarth Prakash. "By the increase of bodily strength and activity the intellect becomes so subtle, that it can easily grasp the most abstruse and profound subjects. It also helps to preserve and perfect the productive element in the human body which in its turn produces self-control,

firmness of mind, strength, energy and acuteness of intellect." Taking hold of this keynote we can well understand why Swami Dayanand speaks of Jnan, (Knowledge) Karma (Action) and Upasana (Devotion) at the same time.

To Swami Dayanand one without the others has no meaning. If a man has to develop himself harmoniously he must cultivate all the three together. This idea of harmony is found in the writings of Swami Dayanand very conspicuously and the reason is not far to seek. A believer in the Vedic revelation- a revelation that divides itself into three parts, Jnan, Karma and Bhakti- Dayanand could not help emphasising harmony and speaking of all the three together. Dayanand clearly points out that the realization of the Lord is the highest aim. This can be very clearly seen from the following passage which Dayanand quotes from the Upnishad –

"Oh Nachiketa! that God, who is worthy of being realized and who is described in the Veda as free from all pains and miseries, and for realizing Whom the Veda opens its teaching, for realizing Whom is followed the path of true piety, is observed the vow of Brahmachary; and owing to the desire of union with Whom, the learned meditate and preach; that Brahma I briefly describe to you. He is Om."

He adds "Thus that Brahma, Who is worthy of being realized is present

everywhere". 'Brahma then is the only object to hanker after' and therefore Dayanand's Revelation- the Veda "Describes especially the Brahma" and has "Brahma as its foremost subject". And why should it not be so, when "His glory is seen in, and vividly described by all the Vedas and Shastras, by nature and its beauty". The object of all the teachings of the Veda being the realization of the Lord, every human being is required by the Swami "to follow the threefold path of Jnan, Karma, and Upasana to realize the higher spiritual life." What higher spiritual life is, is hard to described in words. It is a matter of experience and experiment. They alone can fully grasp the import of the words of wisdom, who in their life have realized the reality behind the phenomenal word. To the ordinary mind mode often the truths of higher life have no reality. But the Reformer and the Prophet has to work for the salvation of these ordinary men. This compels him to put in words what has been realized by the soul. And Dayanand a real benefactor of mankind has tried to vividly describe these higher spiritual truths. Let them who doubt the statement peruse the 7th and 9th chapters of the Satyarth Prakash and ponder over the inspiring and elevating passages in the Bhashya Bhumika. What should invite us more eloquently to this higher life than the following words of Dayanand "For our protection we pray unto God, who is the Creator and

Governor of the living and non-living, the Illuminator of the heart and the mind. He is the giver of strength to all. He is our Support and Protection. Oh God! Thou art the Giver of knowledge, wealth and fame. Have mercy upon us, take us under your protection and look after us..... Verily that God alone is the Support of all and hence is He called Saha..... May we through the mercy of the Remover of all pain realize the truth and may we follow the Dharma the expression of His will..... Oh Lord! The master of vows! mat I take the vow of following the path of rectitude..... Oh the Mighty One lead me on to this path, give me strength to observe my vow faithfully and sincerely"

What can bring to our mind more vividly the thought of worshipping the Lord than the statement- "The bliss of Salvation can be obtained only by realizing the Lord and by uniting with Him through Dhyana (meditation) performed with all the powers of soul and Antahkarana (the internal power of mind)"? What can teach us more forcibly the ideal of resigning the self to the Divine will than the injunction, "Oh man, in order to realize the Lord, dedicate your whole life. Let all- the breath, the eye, the tongue, the mind, the soul, the Brahma or the knower of all the four Vedas, the performer of Yajnas- the lights- sun etc, Dharma (righteousness), happiness, the actions such as : Ashvamedha, the prayers and praises, the

study of the Veda, in fact all the sources of pleasure and happiness be dedicated to the Great God?" What else can make our devotion complete and our love all - forgetting, if not the following precept- "There is neither a second God, nor a third God, neither a fourth God, nor a fifty God....." or the assertion "You will get true happiness and fame only when with sincere soul and humility and humbleness you devote yourself to the Sanatan (Brahma Eternal)."

These are but a few quotations taken at random from the works of Swami Dayanand. But they are sufficient to show the spirit of the Rishi and to prove that he was one of the greatest- if not the greatest- spiritual teacher and 'apostle of Bhakti' in modern times. Scientific and systematic in all other things the Swami does not leave the Bhakta to grope in the dark or to work at random. He goes out, seeks the Bhakta and takes him by hand on to the path of higher life. The course of preparation is carefully laid down. The body, the physical part of the man is first trained to be strong and vigorous and able to bear all troubles, so that the devotee may feel no encumbrance, no hindrance as he advances on the path of spirituality. Tapa and Brahmacharya are the two great factors. A strong body should also be pure before the soul within can find itself in possession of a clean house where to invite the Lord. Daily bath, cleanliness and purity- purity secured by curbing the

lower passions- are required to play their part. Thus is the 'Mala' destroyed.

Arjuna said to Krishna 'Oh Bhagwan the manas (mind) is chanchal (unsteady)'. What Arjuna felt 5,000 years hence, we feel even now. His difficulty is our difficulty. How many of the admirers of Swamiji might have enunciated their own difficulty in the words of Arjuna?

Then Swamiji teaches to conquer the mind by Pranayam (Deep controlled breathing). As a tender flowerplant stands in a tank so does the Manas stand in the tank of Hridaya. (Thoracic region full of air). The plant responds to every movement of the tank. The smallest waves make it vibrate. The plant can be kept in one position by stopping effectively the waves in the tank. The mind can be made steady by stopping the waves of the fluid filling the Hridaya. This is to be done by Pranayam. Two hours every day is the 'Jijnasoo' required to sit in a retired corner and perform Pranayam. One fails to understand why inspite of it the critic speaks of no Bhakti and no devotion in the Arya Samaj? He fails to understand how Swamiji's method is of a silent, serious and systematic character. There is no play of vague sentiments and of restlessness- the things which now-a-day are considered as essentials of Bhakti.

Suggesting how to steady the mind, the great Rishi removes the Avaran (curtain) that separates the Bhakta from the Brahma, the devotee from the object of

devotion, the worshiper from the worshipped. Avidya (ignorance) should be dispelled. For this is required a peculiar atmosphere. The clouds never allow the sun to show its glory, till the surrounding atmosphere is favorable. So the cloud in the mind, 'Avidya', obstructs the devotee from getting a glimpse of the most Glorious Sun. The atmosphere is to be made favorable by constant and fervent prayer. The prayer that the Swami prescribes, the Vedic Sandhya is beautiful beyond compare. It starts by contemplating God as the personification of light and Love and as distributor of peace unto all. With the mind put in this attitude, the devotee looks to his body, the physical thing nearest to him and prays that its different parts may be strong and vigorous. Praying for power, he forgets not to pray for goodness. He remembers.

It is excellent, To have a giant's strength. But it is tyrannous. To use it like a giant, and prays that with the strength of the body he might have purity and excellence. The Mantra (verse) is highly elevating and there is a natural connection between the phrase of the Lord in which He is viewed and the importance of the organ or the sense that is to be pure. If the prayer is for the purification of the head, the Lord is viewed as the Life giver and supporter of the world. How beautiful and natural the relation. For the purification of the Hridaya (Heart) the Lord is contemplated as 'Mahan' (the Great). Great are the

powers of heart-great both for good and evil. Regard and admiration, respect and reverence, generosity and charity, affection and love, all flow out of it. It too is the seat of evil passions like dislike and aversion, contempt and scorn, narrowness and stinginess, malice and hatred. Through the heart are the enemies conquered. Its evil passions repel all friends and change them into rebels. It can take man to Heaven, it can pave his path to hell. Verily it is 'Mahan' (Great) and well has God been invoked as 'Mahan' (the great one). They only can realize the underlying beauty of the Mantra, who ponder over and meditate upon it.

The body being strengthened, the organs purified, the devotee approaches his Lord and tries to realize Him as the Soul of his Soul, as the Giver of Beatitude and as the Dispenser of Peace. A close connection is formed. Seeing the power within, the devotee looks without to see its play. The world is the product of that power. Rit (knowledge Divine) and Sat (Nature) proceed from it. The mountain like wave of the sea, the thunder of the Heaven, the lightening in the cloud, the moon and the sun, the stars and the constellations, the expanse of the earth and the glory of Antaraksha (intervening space) all are the manifestations of the self-same power. To view the power more closely, to realize it more vividly and to feel it more intensely the devotee turns all round, seeks it in all directions. To the east he views it in the

sun, the giver of light and heat and finds that its rays are a protective force. In reverence bows he to the rays, bows he to the power of the Lord and through them bows to the Lord Himself- free from all earthly connections. To make his environments suitable for the growth of spiritual life, he prays that his protective power- a combination of Light or Jnan (knowledge) and heat or Prem (Love) might serve to make him friend to all and all friends to him and might put an end to every kind to hate. Similarly is the glory of the Lord seen in all the six directions and every time is the pious wish for protection and peace most piously expressed. The vivid realization of the play of the Divine power in nature and her glory makes him once more go deep down into the recesses of the unseen and low passing by the flag-staffs (Ketavah) of nature the Bhakta sees now face to face Uttam Jyoti (the Grand Light) free from all darkness, everlasting, ruling all and giving light to all. Realizing the bliss he cries, "Wonderful art Thou- wonderful art Thou- Thou art the life of all the things; Thou art the source of the power of the sun and the eye. Under Thy control are the earth and heaven. Verily, Thou art the Soul of the moveable and the immoveable. May I realize the reality! May I realize the reality!"

The trance passes and the dead reality forces itself on the Bhakta, for long life, for vigorous body, for sound organs, the

devotee prays. But then comes to his mind that most sacred of the Vedic hymns- the hymn with which he was initiated into the path of Dharma and for a pure heart and elevating thought he approaches his Lord. Finally realizing the Peace- giving, the Bliss- yielding nature of the Divine, completely he resigns himself to the Higher will. This is Dayanand's method for destroying Avidya (Nescience), this is his Sandhya. Undoubtedly it is a most potent factor in inculcating the true spiritual life. May the critic realize this! May God remove his prejudice!

Before I take leave of you, dear reader, I shall mention a few more points. By the side of Sandhya or the Brahma Yajna, stands in Swamiji's system Havan or Deva Yajna. It is not to be mistaken for a mere mechanical process for the purification of the air. It has a deep significance. It throws the individual into the universal. It connects man with the forces of nature and establishes a direct communication between them. It practically teaches man to seek his good in the general weal, to feel his life in the all- embracing life. And look at the 'Mantras' (Verses recited); how forcibly and elegantly do they remind the 'Yajman' (performer of Havan) of the higher spiritual life. Oh! how beautifully does each speak of the Lord and His power! Each Mantra reminds the repeater of his own insignificance in the great 'Yajna' of the Lord and so he himself says -

"I do this for Thy sake, I do this for Thy Sake".

It should also be borne in mind that the Sadhana (Process of arriving at the Higher Spiritual life) prescribed by Dayanand is Akhanda (continuous). Through Brahmachary, Grihastha and Vanprastha stages it is to be continued. Those who choose to have a detailed view of this may well spend a few days in going through the Sanskar-Vidhi (Hand Book of ritual) of Swamiji. I shall content myself with merely referring to the Mantras which a Grihasthi is required to meditate upon each morn. How eloquently do they teach him to yield his will to the Divine Will, to resign himself to the Lord.

Brother Arya Samajist! I have tried to vindicate the Swamiji. I have tried to remove misunderstanding regarding him. It is now for you to vindicate yourself and to vindicate the Samaj. In my humble opinion, it should be yours to walk on the path chalked out by your great Guru and to try to become a Bhakta yourself. Do you feel for the ignorant masses? Do you feel for the superstition- ridden sons of humanity? Does your heart grieve to see the troubles of mankind? Do you ever shed tears to see the load of sins with which the earth is heavy? Does your imagination ever fire you to be a sincere and devout follower of the Rishi? Do you ever feel that you are called upon to discharge the trust that has been left in your hand? Then brother! wake up and follow my humble suggestion. This alone will be sufficient to give us peace within and goodwill without; to bless us and make the world happy!

भारतीय स्वतंत्रता सेनानी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा

प्रस्तुति - कृष्णगोपाल आर्य
कोटा (राज.)

श्यामजी कृष्ण वर्मा एक भारतीय क्रांतिकारी, वकील और पत्रकार थे। वो भारत माता के उन वीर सपूतों में से एक हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन देश की आजादी के लिए समर्पित कर दिया। इंग्लैंड से पढ़ाई कर उन्होंने भारत आकर कुछ समय के लिए वकालत की और फिर कुछ राजघरानों में दीवान के तौर पर कार्य किया पर ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों से त्रस्त होकर वो भारत से इंग्लैंड चले गये। वह संस्कृत समेत कई और भारतीय भाषाओं के ज्ञाता थे। उनके संस्कृत के भाषण से प्रभावित होकर मोनियर विलियम्स ने वर्माजी को ऑक्सफोर्ड में अपना सहायक बनने के लिए निमंत्रण दिया था। उन्होंने 'इंडियन होम रूल सोसाइटी', 'इंडिया हाउस' और 'द इंडियन सोसिओलोजिस्ट' की स्थापना लन्दन में की थी। इन संस्थाओं का उद्देश्य था वहां रह रहे भारतियों को देश की आजादी के बारे में अवगत कराना और छात्रों के मध्य परस्पर मिलन एवं विविध विचार-विमर्श। श्यामजी ऐसे प्रथम भारतीय थे, जिन्हें ऑक्सफोर्ड से एम०ए० और बार-एट-ला की उपाधियाँ मिलीं थीं।

श्यामजी कृष्ण वर्मा का जन्म 4 अक्टूबर 1857 को गुजरात के माण्डवी कस्बे में हुआ था। उनके पिता का नाम श्रीकृष्ण वर्मा और माता का नाम गोमती बाई था। जब बालक श्यामजी मात्र 11 साल के थे तब उनकी माता का देहांत हो गया जिसके बाद उनका लालन-पालन उनकी दादी ने किया। प्रारंभिक शिक्षा भुज में ग्रहण करने के बाद उन्होंने अपना दाखिला मुंबई के विल्सन हाई स्कूल में करा लिया। मुंबई में रहकर उन्होंने संस्कृत की शिक्षा भी ली। सन 1875 में उनका विवाह भानुमती से करा दिया गया। भानुमती श्यामजी के दोस्त की बहन और भाटिया समुदाय के एक धनि व्यवसायी की पुत्री थीं। इसके पश्चात उनकी मुलाकात स्वामी दयानंद सरस्वती से हुई, जो एक समाज सुधारक, वेदों के ज्ञाता और आर्य समाज के संस्थापक थे। श्यामजी शीघ्र ही उनके शिष्य बन गए और वैदिक दर्शन और धर्म पर भाषण देने लगे। सन 1877 के दौरान उन्होंने घूम-घूम कर देश में कई

जगहों पर भाषण दिया जिसके स्वरूप उनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। मोनिएर विलिअम्स (जो ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर थे) श्यामजी के संस्कृत ज्ञान से इतने प्रभावित हुए की उन्होंने उन्हें ऑक्सफोर्ड में अपने सहायक के तौर पर कार्य करने का न्योता दे दिया।

श्यामजी इंग्लैंड पहुँच गए और मोनिएर विलिअम्स की अनुशंसा पर उन्हें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के बल्लिओल कॉलेज में 25 अप्रैल 1879 को दाखिला मिल गया। उन्होंने बी. ए. की परीक्षा सन 1883 में पास कर ली और 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' में एक भाषण प्रस्तुत किया जिसका शीर्षक था 'भारत में लेखन का उदय'। उनके भाषण को सराहना मिली और उन्हें रॉयल सोसाइटी की अनिवासी सदस्यता मिल गयी।

बी. ए. की पढ़ाई के बाद श्यामजी कृष्ण वर्मा सन 1885 में भारत लौट आये और वकालत करने लगे। इसके पश्चात् रतलाम के राजा ने उन्हें अपने राज्य का दीवान नियुक्त कर दिया पर खराब स्वास्थ्य के कारण उन्हें यह पद छोड़ना पड़ा। मुंबई में कुछ वक्त बिताने के बाद वो अजमेर में बस गए और अजमेर के ब्रिटिश कोर्ट में अपनी वकालत जारी रखी। इसके बाद उन्होंने उदयपुर के राजा के यहाँ सन 1893 से 1895 तक कार्य किया और फिर जूनागढ़ राज्य में भी दीवान के तौर पर कार्य किया लेकिन सन 1897 में एक ब्रिटिश अधिकारी से विवाद के बाद ब्रिटिश राज से उनका विश्वास उठ गया और उन्होंने दीवान की नौकरी छोड़ दी।

स्वामी दयानंद सरस्वती का साहित्य पढ़ने के बाद श्यामजी कृष्ण वर्मा उनके राष्ट्रवाद और दर्शन से प्रभावित होकर पहले ही उनके अनुयायी बन चुके थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रेरणा से ही उन्होंने लन्दन में 'इंडिया हाउस' की स्थापना की थी जिससे मैडम कामा, वीर सावरकर, वीरेन्द्रनाथ चटोपाध्याय, एस. आर. राना, लाला हरदयाल, मदन लाल ढींगरा और भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी जुड़े थे। श्यामजी

लोकमान्य गंगाधर तिलक के भी बहुत बड़े प्रशंसक और समर्थक थे। उन्हें कांग्रेस पार्टी की अंग्रेजों के प्रति नीति अशोभनीय और शर्मनाक प्रतीत होती थी। उन्होंने चापेकर बंधुओं के हाथ पूना के प्लेग कमिश्नर की हत्या का भी समर्थन किया और भारत की स्वाधीनता की लड़ाई को जारी रखने के लिए इंग्लैंड खाना हो गये।

उनका मानना था कि असहयोग के द्वारा अंग्रेजों से स्वतंत्रता पायी जा सकती है। वो कहते थे कि यदि भारतीय अंग्रेजों को सहयोग देना बंद कर दें तो अंग्रेजी शासन बहुत जल्द धराशायी हो सकता है।

इंग्लैंड पहुँचने के बाद उन्होंने सन 1900 में लन्दन के हाईगेट क्षेत्र में एक आलिशान घर खरीदा जो राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र बना। स्वाधीनता आन्दोलन के प्रयासों को सबल बनाने के लिए उन्होंने जनवरी 1905 से 'इन्डियन सोशियोलोजिस्ट' नामक मासिक पत्र निकालना प्रारंभ किया और 18 फरवरी, 1905 को 'इन्डियन होमरूल सोसायटी' की स्थापना की। इस सोसाइटी का उद्देश्य था "भारतीयों के लिए भारतीयों के द्वारा भारतीयों की सरकार स्थापित करना"। इस घोषणा के क्रियान्वन के लिए उन्होंने लन्दन में 'इण्डिया हाउस' की स्थापना की, जो भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान इंग्लैंड में भारतीय राजनीतिक गतिविधियों का सबसे बड़ा केंद्र रहा। बल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, गोपाल कृष्ण गोखले, गाँधी और लेनिन जैसे नेता इंग्लैंड प्रवास के दौरान 'इण्डिया हाउस' जाते रहते थे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा के राष्ट्रवादी लेखों और सक्रियता ने ब्रिटिश सरकार को चौकन्ना कर दिया। उन्हें 'इनर टेम्पल' से निषेध कर दिया गया और उनकी सदस्यता भी 30 अप्रैल 1909 को समाप्त कर दी गयी। ब्रिटिश प्रेस भी उनके खिलाफ हो गयी थी और उनके खिलाफ तरह-तरह के इल्जान लगाए गए पर उन्होंने हर बात का जबाब बहादुरी से दिया। ब्रिटिश खुफिया तंत्र उनकी गतिविधियों पर कड़ी नजर रखे हुए था इसलिए उन्होंने 'पेरिस' को अपनी गतिविधियों का केंद्र बनाना उचित समझा और वीर सावरकर को 'इण्डिया हाउस' की जिम्मेदारी सौंप कर गुप्त रूप से पेरिस निकल गए।

पेरिस पहुँचकर उन्होंने अपनी गतिविधियाँ फिर शुरू कर दी जिसके स्वरूप ब्रिटिश सरकार ने फ्रांसिसी सरकार पर उनके प्रत्यर्पण का दबाव डाला पर असफल रही। पेरिस में रहकर श्यामजी कई फ्रांसिसी नेताओं को अपने विचार समझाने में सफल रहे। सन 1914 में वो जिनेवा चले गए जहाँ से अपनी गतिविधियों का संचालन किया।

सन् 1920 के दशक में श्यामजी कृष्ण वर्मा का स्वास्थ्य प्रायः खराब ही रहा। उन्होंने जिनेवा में भी 'इंडियन सोसिओलोजिस्ट' का प्रकाशन जारी रखा पर खराब स्वास्थ्य के कारण सितम्बर 1922 के बाद कोई अंक प्रकाशित नहीं कर पाए।

उनका निधन जिनेवा के एक अस्पताल में 30 मार्च 1930 को हो गया। ब्रिटिश सरकार ने उनकी मौत की खबर को भारत में दबाने की कोशिश की।

आजादी के लगभग 55 साल बाद 22 अगस्त 2003 को श्यामजी और उनकी पत्नी की अस्थियों को जिनेवा से भारत लाया गया और फिर उनके जन्म स्थान मांडवी ले जाया गया। उनके सम्मान में सन 2010 में मांडवी के पास 'क्रांति तीर्थ' नाम से एक स्मारक बनाया गया। भारतीय डाक विभाग ने उनके सम्मान में एक डाक टिकट भी जारी किया और कच्छ विश्वविद्यालय का नाम उनके नाम पर रख दिया गया। *****

मुक्ति -- जिससे सब बुरे कामों और

जन्म मरण आदि दुःख सागर से

छूटकर सुखस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त

होके सुख ही में रहना "मुक्ति"

कहती है।

- महर्षि व्यासदेव सरस्वती

गलती तो हम भी करते हैं!

— वेद कुमार दीक्षित (देवाय)

तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है “यानि अनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि, यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयो— पास्यानि नो इतराणि।” यह गुरु का अपने शिष्य के प्रति उपदेश है कि जो हमारे अनिन्दित कर्म हैं तुम्हें उनका ही सेवन करना चाहिए, अन्यो का नहीं। इसी प्रकार जो हमारे धर्मानुकूल आचरण हैं तुम्हें उन्हें ही अपनाना चाहिए इसके विरुद्ध आचरण को नहीं। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि मनुष्य चाहे कितना भी महान हो उसमें कोई न कोई कमी या दोष होता ही है। यहां उपनिषद् का ऋषि जिस तरह सदाचार को ही ग्रहण करने की बात कह रहा है उससे यह अर्थ निकलता है कि उनमें भी कुछ मानवीय दोष हैं जो शिष्य के व्यक्तित्व निर्माण में रुकावट बन सकते हैं। हम सभी जानते हैं मनुष्य अल्पज्ञ है, उसमें अच्छाइयां और बुराइयां दोनों होती हैं। हम यदि इतिहास में देखें तो सामान्य जन तो छोड़िए बड़े-बड़े ज्ञानी, ऋषि—मुनि व महापुरुष भी किसी न किसी दोष से युक्त रहे हैं। हम माने या न माने वस्तुतः इंसान दो तरह का जीवन जीता है। एक स्वाभाविक और दूसरा कृत्रिम।

मनुष्य प्रायः कृत्रिमता में दोषों को छिपा कर अच्छाई वाला पक्ष ही रखता है। उदाहरण के रूप में भारतीय सभ्यता के दो महापुरुष और भगवत्पद प्राप्त श्री राम और श्री कृष्ण दोनों का ही जीवन कई विवादित बातों से जुड़ा हुआ है, जिनकी समय समय पर लोगों द्वारा आलोचना होती रहती है। हम इसे लांछन भी कह सकते हैं। यहां बात यह है कि किसकी निंदा करनी योग्य है और किसकी नहीं। निंदा का कारण, निंदा का स्तर, निंदा की परिस्थिति और निंदा से लाभ, यह सब विचारणीय है। देखिए, जब कोई विदेशी, अधर्मी व्यक्ति दूसरे धर्म, संस्कृति व सभ्यता की निंदा या आलोचना करता है तो ऐसा करने के लिए वह स्वतंत्र है। यह उसके अधिकार क्षेत्र में है, वह कर सकता है। क्योंकि न वेत्ति यो यस्य गुण प्रकर्ष, स तस्य निंदाम् सततं करोति। जो जिसके गुणों की श्रेष्ठता को नहीं जानता वह उसकी सतत निंदा ही करता है। अतः वह दोषी

नहीं है। किन्तु जब यही कार्य कोई स्वदेशी और स्वधर्मी व्यक्ति अपने देश, अपनी जाति, अपनी संस्कृति और अपने महापुरुषों के प्रति करता है तो उसका यह कार्य न केवल अनुचित है बल्कि निन्दनीय भी है। अब प्रश्न यह है कि हम ऐसा करके क्या प्राप्त करना चाहते हैं? अपने ही महापुरुषों और पूर्वजों का चरित्र हनन करके हम कैसा समाज बनाना चाहते हैं। इससे नई पीढ़ी को कौन सी अच्छी सीख देना चाहते हैं? इसमें चिंता की बात तब और अधिक बढ़ जाती है जब हम विदेशियों के स्वर में स्वर मिलाकर अपने ही माननीयों को गाली देने लगते हैं उन पर कटाक्ष करते हैं। इतना ही नहीं इतिहास के गर्त से ऐसा—ऐसा बदबूदार कीचड़ निकालकर लाते हैं कि पूछो मत। फिर उसे प्रसाद की तरह सर्वत्र वितरण भी करते हैं। यह कतई शोभनीय नहीं है। कबीर कहते हैं — निंदक नियरे राखिए, तो हमारी निंदा सुन—सुनकर सामने वाला भले ही न सुधरे पर हम अपने निंदक कर्म में अवश्य पारंगत हो जाते हैं। कुछ लोग तो इस कला में इतना रस लेते हैं कि उन्हें यह कर्म करते हुए अपने और पराए का भी ज्ञान नहीं रहता। चर—अचर, धरती, आकाश सब की निंदा कर डालते हैं। धीरे—धीरे कुछ स्वार्थी अवसरवादी तत्व उन्हें निंदा—कर्मकाण्ड कराने के लिए आमंत्रित भी करने लगते हैं। जहां ये निंदकाचार्य भूत, भविष्य, वर्तमान की सभी प्रकार की दुरावस्था या अव्यवस्था के लिए पूर्वजों, अग्रजों और अनुजों तक को जमकर कोसते हैं। क्या हमें नहीं लगता कि इससे समाज को कितनी क्षति होती है! हमारे राष्ट्रोत्थान के कार्य को कितना नुकसान होता है! क्यों हम संतों या महापुरुषों की अच्छाइयां ही ग्रहण नहीं करते! क्यों हमारा स्वभाव छिद्रान्वेषी हो जाता है! क्यों एक महापुरुष दूसरे के लिए निन्दनीय हो जाता है! क्यों हम विषादपि अमृतं ग्राह्यम्, का सिद्धांत नहीं अपनाते। महर्षि दयानन्द ने सत्य के रक्षण हेतु खण्डन का मार्ग अपनाया, किन्तु यह निंदा न थी। निंदा और खण्डन में पर्याप्त अंतर होता है। उन्होंने अपने सत्य के पक्ष को प्रमाणपुरस्सर रखा किन्तु निंदा नहीं की। हाँ,

विधर्मियों एवं दुरात्माओं के दृष्टिकोण में यह निंदा हो सकती है। किन्तु जिसका अंतःकरण निर्मल हो, जो सबका कल्याण चाहता हो तथा मानव मात्र को मित्र की आंखों से देखता हो, वह किसी की निंदा कैसे कर सकता है! महर्षि ने किसी प्रसंग में एक बार कहा था कि यदि कोई अपनी बुराई नहीं छोड़ सकता तो मैं अपनी अच्छाई कैसे छोड़ दूँ। यदि शालीनता के दायरे में रहकर असत्य का खंडन किया जाए तो वह निंदा नहीं होती है। किसी कुमार्गी को कुमार्गी कहना निंदा नहीं होती है। महर्षि ने अमीचंद को उसकी कमियाँ बताई तो यह निंदा न थी। गुरु यदि शिष्य की कुचेष्टाओं पर कठोर वचन कहता है तो यह निंदा नहीं होती। हां, जब हम चांद में दाग ढूँढने लग जाते हैं या अमृत में विष का अन्वेषण करते हैं तो यह निंदा है। वस्तुतः जब हमारी सोच का दायरा छोटा हो जाता है तब हम निंदा के कर्म में प्रवृत्त होते हैं। क्या संसार में हमारे अतिरिक्त अच्छे लोग नहीं हैं ? और जो-जो हैं, वो-वो आर्य हैं। चाहे वे अफ्रीकी हो या अरब वाले, अमेरिकन हो या चीन वाले, क्या फर्क पड़ता है! हमें तो सर्वसमावेशी होना चाहिए। एक अन्य रोचक तथ्य यह है कि आज निंदा की भाषा भी बदलती जा रही है। इसे भाषा का विकास कहे या ह्रास, यह तो अपना-अपना दृष्टिकोण है। हम तो इतना ही कहेंगे कि निंदा की भाषा निंदा करने से भी ज्यादा निंदनीय हो गई है। लेकिन इन सबसे हमारे वसुधैव कुटुंबकम् के पवित्र भाव और कृपवन्तो विश्वमार्यम् के महान् कार्य को भारी नुकसान हो रहा है। इससे संघटन नहीं विघटन हुआ है। यदि हम तू भी गंदा, यह भी गंदा, का राग अलापते रहेंगे तो एक दिन पतझड़ के उस पेड़ की भांति हो जाएंगे, पत्ते भी जिसका साथ छोड़ देते हैं। अस्तु!

अलमति विस्तरेण बुद्धिमद् वर्येषु।।

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए

आर्य लेखक बन्धु अपनी

सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।

शब्द पूर्णिमा गीत

सुधा-घट लेकर आया सोम,
शब्द की पूनम आई है।
हुए हैं धवल धरा और व्योम,
शब्द की पूनम आई है॥

अंबर में हंसता मयंक है
आज नहीं इस पर कलंक है।
चराचर देखे होकर मौन।
शब्द की पूनम आई है॥

विमल चंद्रिका नहलाती है,
तन - मन शीतल कर जाती है।
बनाती पत्थर को भी मोम।
शब्द की पूनम आई है॥

जग को बांट रहा अमृत- पय,
पीकर पुष्ट बना लो निज वय।
करो नित पायस का ही होम।
शब्द की पूनम आई है॥

यदि शतायु की अभिलाषा है,
शब्द - पूर्णिमा एक आशा है।
पिओ सब औषधियों का सोम।
शब्द की पूनम आई है॥

हो चाहे कोई भी मौसम,
वयम जीवेम शब्दः शतम्।
'वेद' के सिवा बखाने कौन।
शब्द की पूनम आई है॥

— वेद कुमार दीक्षित
(देवास)